वेदोक्त भक्ति ज्ञान

तथा

 इनका फल

उपास्यब्रह्मका नाम स्थान तथा रूप →

श्री दण्डी संन्यासी रामतीर्थजी

॥ ॐ ॥

❀ वेदोक्त भक्ति ज्ञान तथा इनका फल ❀

लेखक—

श्री दण्डी संन्यासी रामतीर्थ जी

गंगाजी की ओर रामप्यारी का स्थान, भूपतवाला, हरिद्वार

वा

मन्दिर सोनियाँ, लुधियाना

प्रकाशक—

मुरारिलाल सोनी, मुहल्ला सोनियां, लुधियाना

सहायक— भक्तगण

पुस्तक प्राप्तिस्थान

अमोलकराम ज्योतिषी, मंदिर सोनियां, लुधियाना

मूल्य स्वाध्याय है।

वेदोक्त भक्ति ज्ञान तथा इनका फल

ओं नमों भगवते आदित्य मंडलस्थाय

श्री गुरूभ्यो देवेभ्यो नमो नमः

स्मरण रहेकि असांप्रदायिक होनेसे मंत्रात्मक वेद तथा मंत्र ब्राह्मणात्मक ईश केन कठ प्रश्न मुण्डक मांडूक्य तैतरीय ऐतरेय छांदोग्य एवं बृहदारण्यक ये दश उपनिषदही सबकेलिये सम्मानित हुएहैं। इनके अनुसारी होनेसे ब्रह्मसूत्रभी सर्वमान्य हुआहै। इसलिये इनके आधारपर ही भक्तिज्ञान और इनके फलका निरूपण किया जावेगा। उपनिषदोंमें कहींपर ओंमें ब्रह्मबुद्धि-करके ओंकारकेद्वारा ब्रह्मकी उपासना कहीगईहै और कहींपर ओंको वाचक तथा ब्रह्मको वाच्य मानकर ब्रह्मकी भक्ति करनेका विधानहै। परन्तु यहांपर तो मायायुक्तब्रह्मकी अभेदरूप उच्च उपासना लिखनेका प्रयास किया जारहा है।

मायाविशिष्टब्रह्मकी अभेदभक्तिका अधिकारी

जिस मनुष्यने पूर्वजन्ममें अथवा इस जन्ममें वैदिक अग्नि-होत्र आदि कर्म कियाहै या गायत्रीमंत्रके अनेकों पुरश्चरण कियेहैं या फिर अन्य जीवोंकी किसी प्रकारसे भलाई निष्काम बुद्धिसे कीहै- इसीसे जिसको इस लोकके तथा स्वर्गलोकके भोगोंसे वैराग्य होगयाहै और वह ब्रह्मलोकके सुखोंकी कामना वालाहै वह व्यक्ति मायायुक्तब्रह्मकी अभेद उपासना करनेका अधिकारीहै।

उपास्यब्रह्मका स्वरूप

तैतरीय उप० में ब्रह्मानन्दवल्लीके आठवें अनुवाकमें श्रुति— "स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः" भृगुवल्लीके दशवें अनुवाकमें श्रुति— "स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः" वह जो इस पुरुष में है और जो उस आदित्य नाम सूर्यमें है वह (सच्चिदानन्द), दोनोंमें एकहै । यह श्रुतियोंका अर्थहै । छान्दोग्य उप० के अ० १ खंड ६ में श्रुति— "य एषोऽन्तरादित्ये पुरुषो दृश्यते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः तस्य पुण्डरीकमेवमक्षिणी" जो यह आदित्यके अन्दरमें सुवर्णमय पुरुष देखाजाताहै, सुवर्ण जैसी दाढी मूंछवाला और सुवर्ण जैसे केशोंवालाहै तथा यह नखसे लेकर सब सुवर्ण जैसाहै और उसके नेत्र कमल जैसेहैं । छान्दोग्य अ० २ खंड १ में श्रुति—"असौ वा आदित्यो देवमधु" वह सूर्य देवताओंका मधुहै, अर्थात् वे इस मधु सहद या अमृतकेद्वारा जीवन धारणकरतेहैं । बृहदारण्यक उ० अ० २ ब्राह्मण ३ "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे" (निर्गुण सच्चिदानन्द) ब्रह्मके दो रूपहैं, इत्यादि श्रुतिके अनुसार उनमें, एक उपास्यरूप सूर्यस्थानीहै, जोकि सभी देवताओंमें बड़ाहोनेसे अधिदैव कहाजाताहै । और दूसरा उपासकरूप मनुष्यस्थानीहै जोकि साधारण जीवोंमें कर्मयोनिहोनेसे सभीसे उत्तम अध्यात्म कहागयाहै । उक्त श्रुतिका यह संक्षिप्त भावार्थके सहित अर्थहै । इसप्रकार उपनिषदोंमें सूर्यस्थानी ब्रह्म या ईश्वर उपास्य मानागयाहै । कठ उप० अ० १ वल्ली ३

मंत्र १५-१६— "एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म" इत्यादि मंत्रोंके अनुसार तथा प्रश्न उप० प्रश्न ५ "एतद्वै सत्यकाम" इत्यादि श्रुतिसे इसीका नाम अपरब्रह्महै । 'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे" इत्यादि ऋग्वेदके मंत्रसे इसीका नाम हिरण्यगर्भहै । मांडूक्य उप० श्रुति६ "एष सर्वेश्वर" इत्यादि श्रुतिसे इसीका नाम सर्वेश्वर सर्वज्ञ और अन्तर्यामीहै । यही शुद्धसत्वगुणप्रधान मायावृत्तिवाला ईश्वरहै-इसीसे यह सर्वका ज्ञाता होनेसे सर्वज्ञहै । क्योंकि यह ज्ञानरूपसे सर्वव्यापकहै या इसका ज्ञान व्यापकहै- इसीसे यह सबका ईश्वर या प्रेरकहोनेसे सर्वेश्वरहै । शुभाशुभ कर्मका फलप्रदाता तथा प्रार्थना करने पर अन्दरमें प्रेरणाकरनेसे अन्तर्यामीहै । यही उपास्य ब्रह्म या ईश्वरहै । स्मृतियोंके प्रमाणोंसे गायत्रीमंत्रद्वारा, प्रातः सायंकी संध्याद्वारा तो सूर्यस्थानी उपास्यब्रह्म निश्चितहीहै । ऐसेतो सच्चिदानन्द, अहंवृत्ति से रहित यानी निर्गुणरूपसे ब्रह्म या व्यापकहै, वह अहंवृत्तिके सहित ब्रह्म नहीं किन्तु परिछिन्नहै, तोभी ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद ३ सूत्र ९ "समीप्यात्तु तद्व्यपदेशः" इसके अनुसार, निर्गुणसच्चिदानन्दब्रह्मके समीपहोनेसे यानी उसीका विशेपरूपहोनेसे और शुद्धसत्वगुणप्रधानहोनेसे हिरण्य-गर्भको भी ब्रह्म कहागयाहै । अतः यही उपास्यब्रह्महै ।

उपासना या भक्ति

छांदोग्य उप० अ० ४ खंड ११ श्रुति—"य एष आदित्ये पुरुषो दृश्यते सोऽहमस्मि स एवाहमस्मि" जो यह आदित्य या सूर्य-में पुरुष देखाजाताहै वही मैं हूँ वहीं मैं हूँ इस श्रुतिके अनुसार,

खंड ६ श्रुति ५ "अथ यत्रैतदस्माच्छरीरात्" इत्यादि श्रुति तथा ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद २ सूत्र १८ "रश्म्यनुसारी" इसके प्रमाणसे, सूर्यकी किरणोंको प्राप्त होजावेगा। ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद २ सूत्र १९ "निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वात्।" यदि कहोकि रात्रिमें तो किरणें नहीं होतीहैं, जब उपासक रातको प्राण त्यागेगा तो सूर्यकी रश्मियोंको कैसे प्राप्त होगा, ऐसी शंकाकरके व्यासजी उत्तर देतेहैं कि जबतक शरीरहै तबतक इसकेसाथ किरणोंका सम्बन्धहै। अतःवह रातमेंभी किरणोंको प्राप्तहोगा। छांदोग्य० अ० ८ खंड ६ "या एता" इत्यादि श्रुतिसे, ये पिंगला आदि नामवाली नाड़ियां सूर्यसे सम्बन्ध रखतीहैं, उस सूर्यसे चलतीहैं, इन नाड़ियोंसे टकरातीहैं और यहांसे चलतीहैं उस सूर्यसे मिलतीहैं। छांदोग्य अ० ४ खंड १५ "अथ चैवास्मिञ्छव्यं कुर्वन्ति यदि च नार्चिषमेवाभिसंभवन्ति" इत्यादि श्रुतिसे, ऐसे उपासककी मृत्यु होजानेपर कोई उसका मृतककर्म करे या न करे वह सूर्यकी रश्मियोंको प्राप्तहोजावेगा, वहांसे दिन शुक्लपक्ष उत्तरायण संवत्सर आदित्य चन्द्रमा बिजली और अमानवपुरुषकेद्वारा ब्रह्मलोकमें पहुँचजावेगा। ब्रह्मसूत्र अ० ४ पाद २ सूत्र २१ "योगिनः प्रति च स्मर्यते स्मार्ते चैते।" इस सूत्रमें ऐसा कहाहैकि श्रुतिमें अहः शुक्लपक्ष आदि शब्द, काल या समयके बोधकनहींहैं, सांख्य और योगने योगियोंके प्रति दिन आदि कालका ग्रहणकियाहै, परन्तु ये स्मार्तहैं किन्तु ये श्रुति मूलक नहींहैं। इसलिये ब्रह्म० अ० ४ पाद २ सूत्र २० "अतश्चायनेपि दक्षिणे" इसके अनुसार,

दक्षिणायनमेंभी प्राणत्यागनेपर वह ब्रह्मलोकमें जावेगा । क्योंकि ब्रह्म० अ० ४ पाद ३ सूत्र ४ "अतिवाहका तल्लिङ्गात" इसके अनुसार, अर्चि दिन शुक्लपक्ष उत्तरायण इत्यादिनामवाले भक्तको ब्रह्मलोकमें ले जानेवाले ये सब चेतन देवताहैं, मार्गचिन्ह नहींहैं । इसलिये श्रुतिमें काल या समयका कुछभीमान नहीहै । प्रश्न उप० प्रश्न १ श्रुति १५ "तेषामेवैष विरजो ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम्" उन्हेंही वह रजोगुणसे रहित ब्रह्मलोक प्राप्तहोताहै, जिनमें तप ब्रह्मचर्य और जिनमें सत्य स्थितहै, अर्थात् जो सत्यभाषीहैं । १६ "तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति" उन्हेंही वह शुद्धब्रह्मलोक मिलताहै, जिनमें दम्भ झूठ और छल नहींहैं । मुण्डक उप० मु० १ खंड२ मंत्र ११ "तपः श्रद्धे ये ह्युपवसंत्यरण्ये" इसके अनुसार, तप और श्रद्धापूर्वक जो वनमें वासकरनेवालेहैं ऐसे वानप्रस्थ एवं जो रागद्वेषसेरहित भिक्षा मांगकर खानेवाले संन्यासीलोगहैं वे, विक्षेपसे रहितहुए सूर्यद्वारसे ब्रह्मलोकमें जातेहैं, जहां अविनाशी परमात्माका निवासहै । ब्रह्म० अ० ४ पाद ३ सूत्र १५ "अप्रतीकालंबनान्नयतीति बादरायणः" इसमें व्यासजी कहतेहैंकि ब्रह्मकी प्रतीकरूपसे उपासना करनेवालेके विना अन्य सभी उपासकोंको अमानवपुरुष ब्रह्मलोकमें लेजाताहै । ब्रह्मलोकमें पहुंचेहुए उपासकको, व्यासजी अब मुक्त नामसे पुकारतेहैं । ब्रह्म० अ० ४ पाद ४ सूत्र "संपद्याविर्भावः स्वेन शब्दात्" ॥१॥ "मुक्तः प्रतिज्ञानात्" ॥२॥ "आत्मा प्रकरणात्" ॥३॥ "अविभागेन दृष्टत्वात्" ॥४॥ इन सूत्रोंके प्रमाणसे,

आदित्यान्तर्गत सुवर्णमय पुरुष परमात्माकी सोहमस्मि तथा ईशा-
वास्योपनिषद् मन्त्र १६ "पूषन्नेकर्षे" इसका अन्तिमपाठ "योऽसा-
वसौ पुरुषः सोहमस्मि" जो उस आदित्यमें पुरुषहै वह मैं हूं, इस
मन्त्रके अनुसार, "सोहमस्मि" वही मैं हूं ऐसी अभेदभक्ति करनी
चाहिये। ऐसेही प्रश्न उप० प्रश्न ५ विशेषकर मांडूक्य उप० में
ओंकी अकार उकार मकाररूप तीनमात्राओंका तथा आत्माके
विश्व तैजस प्राज्ञ नाम के अध्यात्मतीनपादोंका एवं ब्रह्मके वैश्वानर
हिरण्यगर्भ अन्तर्यामी नामके अधिदैवरूप तीनपादोंका एकीकरण
करके ब्रह्मकी अभेदरूप भक्ति करनेका उपदेशहै। छांदोग्य उप०
प्र० ८ खंड ७ "य आत्मापहतपाप्मा" जो परमात्मा, पापरहित,
जरारहित, मृत्युहीन, शोकरहित, भूखरहित, पिपासारहित, सत्य-
काम, और सत्यसंकल्पहै उसे खोजनाचाहिये उसे विशेषरूपसे
जाननाचाहिये, जो मनुष्य, गुरु उपदिष्टमार्गसे जानकर उसकी
भक्ति करताहै वह सम्पूर्णलोकोंको तथा सर्वकाम ऐश्वर्य विभूति
या अणिमा महिमा आदि भोगोंको प्राप्तकरलेताहै, ऐसा प्रजापतिने
कहा। इस श्रुतिके अनुसार, उपासकको चाहिये कि उपासनाके
प्रगहोनेसे परमात्माके पापरहित आदि धर्मों का अपनेमें आधान-
करके ब्रह्मकी "सोहमस्मि" ऐसी अभेदबुद्धिसे उपासना करे।
भक्तमें जिज्ञासु जैसे उच्च विवेक वैराग्य आदि साधन नहीं
होते, शेष सब साधन जिज्ञासुके साधनोंके समानहीं होतेहैं।
इसलिये "तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदा सर्वांगानि सत्यमाय-
तनम्" इस केन उप० की श्रुतिसे, ब्रह्मविद्याके या उपासनाके

तप=विना किसी प्रतिक्रियाके शीत और उष्णको सहनकर
दम=इन्द्रियोंको वाह्यविषयोंसे रोकना, कर्म–अपने वर्णधर्म त
आश्रमधर्मोंका यथाशक्ति करते रहना, वेदा सर्वांगानि–यथ
शक्ति वेद और उसके अंगोंका स्वाध्याय करना, ये सब उपास
के पाद या पैरहैं और सत्य-मनवाणीसे दूसरोंके हितकेलि
वाक्य बोलना, यह उपासनाका आयतन या रहनेका स्थानहै
एवं अहिंसा आदि पांचयमोंका पालन करना । अहिंसा-मनवाण
शरीरसे किसी प्राणीका अनिष्ट नहीं करना, सत्य–सत्यका अ
पीछे लिखा जाचुकाहै, अस्तेय-चोरीका त्याग करना । ब्रह्मच
स्त्रीके स्मरण आदि आठ प्रकारके मैथुनोंका त्याग करना । स्त्री
तो ऋतुकालाभिगामी होना । अपरिग्रह– किसीसे कुछभी ग्रह
न करना और अपनी वस्तुकोभी शरीरयात्रा निर्वाहके अतिरि
अधिक पासमें न रखना । ये पाँच यमहैं ।

भक्तिका गौणफल

जिस समय भक्त, पूर्वोक्त साधनोंके सहित ब्रह्मकी अभेद
भक्ति करताहै तब उसका अन्तःकरण रजोगुणके और तमोगुण
दबजानेपर इतना शुद्धसत्वगुणप्रधान होजाताहैकिउसमें, ब्रह्म
पापरहित आदि सत्यकाम सत्यसंकल्प पर्यन्तधर्मोंका विकास हो
जाताहै । परन्तु वे परमात्मसम्बन्धी धर्म उसमें टिकाऊ नह
होते । क्योंकि अभीतक उसके साथ अनेकरोगोंके आगार स्थूल
शरीरका सम्बन्ध वनाहुआहै । जवफिर प्रारब्धभोगकी समाप्ति
स्थूलशरीका नाश होजाताहै तव वह उपासक, छांदोग्य० अ०

वह मुक्तपुरुष, ब्रह्मसे अविभक्त या अभिन्न होजाताहै। अर्थात् जैसे लोहेका गोला अग्निमें डाला हुआ तद्रूप होजाताहै। सूत्र५ "ब्राह्मेण जैमिनि रुपन्यासादिभ्यः।" जैमिनिजी कहतेहैंकि वह पापरहित आदि सत्यकाम सत्यसंकल्प पर्यन्त ब्रह्मके धर्मोंसे संपन्न होताहै। अर्थात् जैसे लोहेके गोलेमें अग्निके उष्ण प्रकाश धर्म आजातेहैं, ऐसेही मुक्तके शुद्धसत्त्वगुण प्रधान अन्तःकरणमें ब्रह्मके धर्म आजातेहैं। सूत्र ६ "चिति तन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः।" औडुलोमि कहताहै कि वह चैतन्यमात्ररूपसे अवस्थित होताहै, अर्थात् ब्रह्मसंबन्धि ऐश्वर्यसे नहीं होताहै। सूत्र ७ "एवमप्युपन्यासात्पूर्वभावादविरोधं बादरायणः।" व्यासजी कहतेहैंकि चैतन्यमात्ररूपसे अवस्थित होनेपरभी उसमें ब्रह्मसंबन्धि अणिमा आदि ऐश्वर्य होताहै, इसमें किसीप्रकारकी क्षति नहींहै। सूत्र ८ "संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः।" मुक्तके संकल्पमात्रसे सभी भोग उपस्थित होतेहैं, अर्थात् उसे अन्य साधनोंकी अपेक्षा नहींहै। सूत्र ९ "अत एव चानन्याधिपतिः।" इसीलिये उसका कोई अन्य पति नहींहै, अर्थात् वह परतन्त्र नहींहै। सूत्र १० "अभावं बादरिराह ह्येवम्।" बादरि कहताहैकि मुक्त, मनसेही सब भोग भोगताहै उसके इन्द्रियां शरीर नहींहोतेहैं। सूत्र ११ "भावं जैमिनिर्विकल्पामननात्।" जैमिनिजी कहतेहैंकि मुक्तके इन्द्रियां होतीहैं और शरीरभी होताहै। सूत्र १२ "द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः।" व्यासजी कहतेहैंकि जब मुक्तपुरुष, शरीरके सहित होना चाहताहै तब वह सशरीर होजाताहै, और

शरीरको नहीं चाहताहै तब वह अशरीरि होजाताहै, क्योंकि वह सत्यसंकल्पहै । सूत्र १३ "तन्वभावे संध्यवदुपपत्तेः ।" जब शरीर और इन्द्रियोंका अभाव होताहै, तब उसे स्वप्न अवस्थाके समान जैसे सूक्ष्म भोग प्राप्त होतेहैं । सूत्र १४ 'भावे जाग्रद्वत् ।" और इन्द्रियाँ तथा शरीरके होनेपर जाग्रत अवस्थाके समान स्थूल पितृ आदि भोग प्राप्तहोतेहैं । सूत्र१५ "प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति ।" जैसे एक दीपकसे लगाकर जलाएगए अन्य दीपकभी प्रकाशमान होतेहैं, ऐसेही मुक्तकेद्वारा रचेगए शरीरभी, मन और इन्द्रियोंके सहितही होतेहैं ।

व्यासजी, जीवन्मुक्तकी दशा वर्णन करतेहुए बीचमेंही अब कैवल्यमुक्तिके लिये सूत्र रचतेहैं । शांकरभाष्य- (प्रश्न) "कथं पुनर्मुक्तस्यानेकशरीरावेशादि" जबकि किस करणसे किस विषय-को जाने परन्तु उससे दूसरा हैही नहींहै जिसको वह जाने, इत्यादि श्रुतियां विशेष ज्ञानका निवारण करतीहैं; तब फिर मुक्तके अनेक शरीरमें प्रवेश आदि रूप ऐश्वर्यको किसप्रकार स्वीकार कियागया । 'व्यासजी' इस प्रश्नका उत्तर कहतेहैं । सूत्र१६ "स्वाप्ययसंपत्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ।" ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेय-रूपी विशेषज्ञानका अभाव श्रुतियोंमें कहींपर स्वाप्यय(सुषुप्ति) अवस्थाको लेकर कहाहै और कहींपर सम्पत्ति (कैवल्य) को लेकर कहागयाहै । शांकरभाष्य—जहांपर श्रुतियोंमें इस ब्रह्मसंबंधी ऐश्वर्यको वर्णन कियाहै, वह अवस्था स्वर्ग आदिके समान अन्य अवस्थाहै । अर्थात् वह मुक्ति नहींहै इसलिये श्रुतियोंमें परस्पर

विरोध नहींहै। भामती और आनन्दगिरीय व्याख्यामेंहैकि, कैवल्यके समीपहोनेसे जीवन्मुक्ति—या क्रममुक्तिको मुक्ति कहा-गयाहै, वास्तवमें यह मुक्ति नहींहै। जैसे दिनके समीपहोनेसे प्रातःकालकी लालीको दिन कहाजाताहै, वह वास्तवमें दिवस नहींहै। क्योंकि वास्तवमें दिवस सूर्योदय होनेसेही होताहै। ऐसेही जीवन्मुक्ति, वास्तवमें मुक्ति नहींहै, किन्तु ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय आदि त्रिपुटीका अभावरूप कैवल्यमुक्तिही वास्तवमें मुक्तिहै।

व्यासजी अब प्रकरण प्राप्त जीवन्मुक्तिको फिर वर्णन करतेहैं। सूत्र १७ "जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसंनिहितत्वात्।" अन्य सब प्रकारकी अणिमा आदि विभूति मुक्तपुरुषको होतीहै किन्तु जगतकी उत्पत्ति पालन और संहारके कामको वह नहीं करसकता। सूत्र १८ "प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारकमण्ड-लस्थोक्तेः।" जगतकी उत्पत्ति आदिका काम तो सूर्यमंडलमें अवस्थित परमात्माही करताहै। सूत्र २१ "भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च।" मुक्तोंको भोगमात्रमें ब्रह्मकी समानता होतीहै। अर्थात् वे वाह्य-सृष्टिमें हस्तक्षेप नहीं करसकते। इसप्रकार भक्तको पापरहित आदि, सत्यकाम सत्यसंकल्प पर्यन्त ब्रह्मके ऐश्वर्यकी प्राप्तिरूप भक्ति या उपासनाका गौणफल कहागया।

भक्तिका मुख्यफल

ब्रह्म० अ० ३ पाद ४ सूत्र ५१ ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात्।" श्रवण मनन और निदिध्यासन, इन ज्ञानके साधनों-को करनेवाले व्यक्तिको किसी प्रतिबन्धके न होनेपर इसी जन्ममें

संम्यक् आत्मज्ञान होजाताहै, किसीप्रकारके प्रतिबन्ध होनेपर (भरत और वामदेव आदिके समान) जन्म जन्मान्तरोंमें संशय-रहित आत्मज्ञान होताहै। पंचदशी ध्यानदीप श्लोक ५१ "ब्रह्मलोकाभिवांछायाम्" ब्रह्मलोकके भोगोंकी अभिलाषाको रोक-कर जो मनुष्य, आत्मविचार करताहै वह आत्माको साक्षात्कार नहीं करसकता, अर्थात् ब्रह्मलोककी वांछारूप प्रतिबन्धसे वह ब्रह्मज्ञानी नहीं होता। श्लोक ५२ "वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः" ऐसा शास्त्रहोनेसे ब्रह्मलोकमें वह सृष्टिके अन्तमें ब्रह्माके साथही मुक्त होजाताहै। इस श्लोकमें मुण्डक उप० मु० ३ खंड २ वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः" इत्यादि मंत्रका भावार्थ कहागयाहै। ब्रह्म० अ० ४ पाद ३ सूत्र १० "कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात्।" शांकरभाष्य—"कार्यब्रह्मलोकप्रलयप्रत्युपस्थाने सति तत्रैवोत्पन्न संम्यग्दर्शनाः सन्तस्तदध्यक्षेण हिरण्यगर्भेण सहातः परं परिशुद्धं विष्णोः परमं पदं प्रतिपद्यन्त इति।" कार्यब्रह्मलोककी प्रलय उपस्थित होनेपर वहांही जिन्हें संशयविपर्यसे रहित आत्म-ज्ञान होगयाहै वे ब्रह्मलोकके अध्यक्ष हिरण्यगर्भके साथ (अहंरूपी विद्यावृत्तिके स्वाश्रय सत्में समाप्त होजानेपर) व्यापकरूपी परमपद-को प्राप्त होजातेहैं। यह भाष्यका अर्थहै। छांदोग्य अ० ८ की अन्तिम "न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते" नहीं लौटताहै, २ इस श्रुतिसे, तथा ब्रह्म० अ० ४ पाद ४ "अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात्।" अनावृत्ति श्रुतिसे अनावृत्ति श्रुतिसे, इस अन्तिमसूत्रके अनुसार, जो मनुष्य ब्रह्मलोकके भोगोंको भोगकर कैवल्यमुक्तिकी

भावनासे ब्रह्मलोकमें गयाहै, उसकी पुनरावृत्ति नहीं होती। तात्पर्य यहकि महाप्रलयमें जीवमात्रकी त्रिपुटीके अभावसे द्वैत-रहित कैवल्यमुक्ति होजातीहै, किन्तु वह सापेक्षमुक्तिहै। और जो ब्रह्मलोकमें अथवा इस लोकमें आत्मज्ञानद्वारा मुक्तिहै, वह निरपेक्षकैवल्यमुक्तिहै। इन दोनोंमें इतना अन्तरहै। इसप्रकार मायाविशिष्ट सर्वज्ञ सर्वशक्तिमानब्रह्मकी अभेदभक्तिका मुख्यफल आत्मज्ञानका प्राप्तहोनाहै और आत्मज्ञानका फल कैवल्यमोक्षहै, यही अर्थ श्रुतियों और सूत्रोंसे निर्णीत हुआहै।

जीवात्माका वास्तविक स्वरूप तथा ज्ञेयब्रह्म।

छांदोग्य छठे अध्यायके खंड २ में श्रुति—"सदेव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्" हे सोम्य, यह कारणकार्यरूप जगत्, सृष्टिसे पहिले एकही अद्वितीय सत् था। शांकरभाष्य—"सदेव सदित्य-स्तितामात्रं वस्तु सूक्ष्मं निर्विशेषं सर्वगतमेकं निरंजनं निर-वयवं विज्ञावं यदवगम्यते सर्ववेदान्तेभ्यः।" अर्थात् इच्छाशक्तिके स्वाधिष्ठान सत्में लीन होजानेपर, शक्तिके स्वविषयात्मक या आच्छादक कल्पितरूपके निवृत्त होजानेसे उसकी पृथक या भिन्नरूपसे गणना नहींहै। अतः वह सत् महाप्रलयमें, सांख्य परिकल्पित प्रधानसे रहित, कणाद परिगृहीत परमाणु आदि रूपसे शून्य, तथा वैना-शिक सम्मानित शून्यसे विलक्षण, निर्विशेष निरावरण निरंजन अखंड अद्वैत शुद्ध ब्रह्मथा, किन्तु विशिष्ट अद्वैत ब्रह्म नहींथा। तात्पर्य यहहै जिससेकि, महाप्रलयकी आदि अवस्थामें सत् या सच्चिदानन्दकी कारण अवस्था विलीन होने लगतीहै और

उसकी अन्तिम अवस्थामें सत्की कारण अवस्थाका आरम्भ होजाताहै, इसलिये वह सत्, महाप्रलयकी मध्य अवस्थामें, माया अविद्यासे रहित होनेसे स्वगत आदि तीन भेदोंसे शून्य चतुष्पाद-विशुद्ध निरपेक्ष निर्गुण ब्रह्मथा। क्योंकि उस समय अहंरूपा अविद्याशक्ति सत्से भिन्न नहींहै। अतः वह द्वैतसे रहितहै। इसीसे इसी अध्यायके आठवें खंडमें शांकरभाष्यमें, श्रुतियोंके प्रमाणसे सुषुप्तिमें मरणमें निर्विकल्पसमाधिमें और महाप्रलयमें, सत्को द्वैतरहित पूर्णब्रह्म मानलियाहै। जो लोग, अद्वैतवादी होतेहुएभी इन चार अवस्थाओंमें, सत्से उसकी अहंरूपा अविद्या-शक्तिकी पृथक् सत्ता मानतेहैं, वे द्वैतवादीहैं, किन्तु अद्वैतवादी नहींहैं। क्योंकि वे लोग, अभीतक किसीभी अवस्थामें, सत्को द्वैतरहित शुद्ध ब्रह्म सिद्ध नहीं करसके, इसीसे न आगेही कर-सकेंगे। क्योंकि अविद्याकी वाधक मैं ब्रह्म हूँ, ऐसी विद्यावृत्ति भी तो अन्तमें स्वाश्रय आत्मामें ही लीन होवेगी, कारणकि अविद्या और विद्याका सदात्माही आधारहै। अतः कैवल्यमेंभी द्वैतही बना रहेगा। किन्तु आत्मा शुद्ध ब्रह्म नहीं होसकेगा। अस्तु। अतः वह सत्, महाप्रलयमें अखंड ब्रह्म या निरपेक्ष व्यापक था। "तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति" उसने इच्छाकी बहुत होजाऊं और नामरूपकेद्वारा प्रकट होऊं। भावार्थ यहहैकि उसके एकपाद विशुद्ध सत्में, महाप्रलयकी अन्तिम अवस्थामें अहंवृत्ति उत्पन्न हुई। यह अहंरूपा इच्छा शक्ति स्व नाम सद्ब्रह्मके आश्रितहै और स्व नाम सद्ब्रह्मको ही विषय या आवृत करतीहै, इसीसे यह

स्वाश्रया स्वविषया कहीजातीहै। अब वह स्वाश्रयासे स्वविषया या आच्छादक होगई। अर्थात् अभिन्नताको त्यागकर भिन्नसी होगई। उसी द्वैतरूपकारणवृत्तिद्वारा वही शुद्ध सत्, कारणब्रह्मरूप मायाविशिष्ट ईश्वर और अविद्यायुक्त प्राज्ञ ईश्वर होगया। जैसाकि मृत्तिकाहै, ऐसे एक शुद्ध नामरूपसे उसका पिंडरूप होजानेपर वह द्वैतरूपसा मृतिकाका पिण्ड बनजाताहै और कहाजाताहै। उसी-केद्वारा शुद्ध मृतिकामें घट आदि कार्यकी कारणता आतीहै। ऐसेही शुद्ध सत्में, अहंवृत्तिद्वारा कारणताका आरोप या आरम्भ होताहै। दूसरी इच्छासे सद्रूप कारणब्रह्मने, बुद्धिप्रधान कार्यरूप सूक्ष्मसृष्टिकी रचनाकी, उसीकेद्वारा वह सत्, कारणब्रह्मरूपसे कर्तारूप हिरण्यगर्भ और तैजस नामवाला होगया। तीसरी इच्छा, सद्रूप कर्तामें, वैश्वानर और विश्वरूप बननेके लिये स्थूलसृष्टिके लिये हुई। ऐसी इच्छा करके "तत्तेजोऽसृजत" उसने(हिरणगर्भने) तेजकोरचा,तेजकेद्वारा जलको और जलकेद्वारा पृथिवीको रचा खंड३ "सेयं देवतैक्षत०" उस सद्रूप देवताने इच्छाकी कि अब मैं इन तेज आदि तीन देवताओंमें जीवरूपसे प्रवेशकरके नाम और रूपको प्रकट करूं। इन देवताओंके तीन२ भागकरूं। फिर उस सद्रूप देवताने इन देवताओंमें जीवरूपसे प्रवेशकरके (ब्रह्मा-आदि) नामरूपको प्रकट किया। (पंचदशी चित्रदीप श्लोक१।२।३।४में भी, सृष्टिकी उत्पत्ति शुद्धब्रह्मसेही वस्त्रके दृष्टान्तसे दिखाईगईहै। जैसाकि कहीं वस्त्र, अन्यद्रव्यके सम्बन्ध बिना धौत, मांडदेनेसे घट्टित, स्याहीके चिन्हयुक्त लांछित, एवं वर्णोंके आरोपितहोनेसे रंजित हो-

जाताहै। जैसे एकही वस्त्रकी चार संज्ञाएं हैं। ऐसेही एकही परमात्मा, माया तत्कार्यसे रहित चित्त, मायाके योगसे अन्तर्यामी, सूक्ष्मसृष्टिसे सूत्रात्मा, एवं स्थूल सृष्टिसे विराट कहलाताहै। ऐसा कहाहै।) इस विषयको ऐसे समझना चाहिये। जैसाकि मनुष्य, एकरूप या आकार वाली वस्तुहै। जबतक इसके साथ किसी गुण कर्म जाति देश आदिका सम्बन्ध नहीं होता, तबतक यह निर्गुणरूपहै। जब इसके साथ, गुण आदिका लगाव होजाताहै, तब इसका आचार्य राजा मंत्री किसान या द्वारपाल आदि एवं पुत्र आदिके संबन्धसे पिता आदि मिश्रित विशिष्ट या सगुण नाम होजाताहै। क्योंकि अब इसमें मनुष्यात्मकरूप, गुण कर्म जाति या संबन्ध ये दो वस्तुएं होगईहैं। यह मिश्रित या सगुण नाम, एक दूसरेसे भिन्नहै। इसलिये राजातो द्वारपाल से भिन्नहै और द्वारपाल राजासे अलगहै। परन्तु मनुष्यात्मकरूप, दोनोंमेंही व्यापकहै। इसीप्रकार सत् या सच्चिदानन्दभी एक सामान्यरूपहै और वह ब्रह्म या व्यापकहै। जबतक इसमें अहंवृत्ति उत्पन्न नहीं हुई, तबतक यह निर्गुण निराकार रहताहै। जब इसमें अहं या मैं वृत्ति प्रकट हुई तब इसका शुद्धसात्विकीवृत्तिसे अन्तर्यामी हिरण्यगर्भ वैश्वानर नाम होजाताहै। और जहां जहां सत्में शुद्धसात्विकीवृत्तिकी अपेक्षा, कुछ मलिन सात्विकी अहंवृत्ति प्रकटहुई, वहां वहां पर सत्काही, प्राज्ञ तैजस और विश्व सगुण नाम होजाताहै। (विष्णु शिव प्रजापति इन्द्र वरुण आदि देव दानव मानव कीट पंतग वृक्ष पर्यन्त सद्रूप विश्वके ही नामहैं)

क्योंकि अब इसमें सत् आत्मकरूप तथा गुण आदि दो वस्तुएं होगईहैं। यह मिश्रित या सगुण नाम, एक दूसरेसे भिन्न २ है। इसीसे आदित्यस्थानी ईश्वरसे तो देव दानव आदिसे भिन्नहै, और देव दानव आदि सब ईश्वरसे पृथकहैं। परन्तु सच्चिदानन्दात्मकरूप, ईश्वरसे लेकर सबमेंही व्यापकहै। इसप्रकार वह एकही सत्, एकसे अनेक होगया-इसीको विवर्तवाद (एकही वस्तुका अपने रूपको न त्यागते हुए अन्य रूपसे प्रतीत होना) कहतेहैं। अर्थात् वही एक अद्वितीय सत्, इच्छारूपी मनके सहित होनेसे संसारी बनगया या उपास्य उपासक बनगया। (सृष्टि क्रमके विशेष बोधार्थ "वैदिक ब्रह्म विचार" पुस्तकके सगुण ब्रह्म प्र० को पढ़िये)

अब इसी अध्यायके अष्टमखंड की पहिली श्रुतिको पढ़िये। उद्दालको हारुणी श्वेतकेतुं पुत्रमुवाच स्वप्नान्तं मे सोम्य विजानीहीति यत्रैतत्पुरुषः स्वपिति नाम सता सोम्य तदा संपन्नो भवति स्वमपीतो भवति तस्मादेनं स्वपितीत्याचक्षते स्वं ह्यपीतो भवति"।१। आरुणी उद्दालकने अपने श्वेतकेतु पुत्रसे कहाकि सोम्य, अब तू मेरेसे सुषुप्तिको विशेषरूपसे समझले, जिस अवस्थामें यह पुरुष स्वपिति नामवाला होताहै, हे सोम्य, उस समय यह सत्से संपन्न हो-जाताहै, यह अपनेको प्राप्त होताहै, इसीसे लोग इसे स्वपिति या सोताहै ऐसा कहा करतेहैं, क्योंकि यह अपनेको प्राप्त होजाता-है ।१। शांकरभाष्य— "यन्मयो यत्स्थश्च जीवो मनन दर्शन श्रवणादि व्यवहाराय कल्पते तदुपरमे च स्वं देवतारूपमेव प्रतिपद्यते।" जीव जिसके रूपसे और जिसमें स्थित होकर मनन दर्शन और

श्रवण आदि व्यवहार करताहै (सुषुप्तिमें) उस मनके उपराम होनेपर अपने पर देवतारूपको प्राप्तहोजाताहै। "नह्यन्यत्र सुषुप्तात्स्वमपीतीति जीवस्येच्छन्ति ब्रह्मविदः" ब्रह्मवेत्तालोग, सुषुप्तिसे भिन्न अन्य अवस्थामें (जाग्रत स्वप्नमें) जीवका अपने स्वरूपको प्राप्त होना नहीं मानते, अर्थात् सुषुप्तिमें ही मानतेहैं। "जीवात्मना मनसि प्रविष्टा नामरुप व्याकरणय परादेवता सा स्वमेवात्मानं प्रतिपद्यते जीवरूपतां मन आख्यां हित्वा" नामरुपको प्रकट करनेकेलिये मनमें प्रविष्ट हुआ परमात्मा, मन संज्ञक जीवरुपको त्यागकर वह अपने स्वरुपको प्राप्त होजाताहै। "मनसि प्रविष्टं मन आदि संसर्गकृतं जीवरूपं परित्यज्य स्वं सद्रूपं यत्परमार्थसत्यमपीतो अपिगतो भवति" मनमें प्रविष्ट हुआ मन आदिके सम्बन्धसे कियेहुए जीवरूपको त्यागककर अपना जो परमार्थ सत्य सद्रूपहै उसे प्राप्त होजाताहै। "अतस्तत्सत्त्वमसीतिश्वेतकेतो" हे श्वेतकेतो, इसलिये वह सत् तू है। भाष्यमें तत्त्वमसि वाक्यका ऐसा अर्थ कियाहै। इसप्रकार भाष्यमें अहंवृत्तिसे रहित शुद्ध सत्को, तत्पदसे ग्रहण कियाहै। और अहंवृत्तिके सहित सत्को त्वंपदसे ग्रहण कियाहै। इससे ईश्वर और जीव दोनोंही त्वं पदमें आजातेहैं। तात्पर्य यहहैकि सृष्टिसे पहिले जो द्वैतरहित सत्था, तथा जिसने इच्छा करके तेज आदिको रचकर उसमें जीवरूपसे प्रवेश किया, एवं वही जो सत्, अब सुषुप्तिकी मध्य अवस्थामें मनके सत्में लीन होजानेसे द्वैतरहित पूर्णब्रह्म होगयाहै, वही तू है। अर्थात् मनकी निरूद्ध अवस्थामें तत् और त्वंमें भेद नहींहै। क्योंकि अहंवृत्तिसे रहित

सत्का परोक्षनाम तत् है और सद्रूप तत् काही अहंवृत्तिके सहित अपरोक्षनाम त्वं है। स्मरणरहेकि अहं या मैं यह एक, सत्वरज और तमोगुणरूपा सामान्य वृत्तिहै। यही सत्में संसारीपनेका हेतुहै। इसीके द्वारा सत्का, मायाविशिष्ट ईश्वर और अविद्यायुक्त प्राज्ञ ईश्वर नाम होजाताहै। क्योंकि कारण शरीरका अभिमानी प्राज्ञभी ईश्वरहै। इसीका कठ० में "अव्यक्तात्पुरुषः परः" अव्यक्तसे परे पुरुषहै- ऐसा अव्यक्त नामहै। क्योंकि यह सामान्यवृत्ति किसी विशेष अर्थकी व्यंजक या बोधक नहींहै। इसीका नाम तैतरीयमें, आनन्दमयकोशहै तथा मुण्डक० में "अक्षरात्परतः परः" पर अक्षरसे परे परमात्माहै, ऐसा अक्षर नामहै। क्योंकि यह क्षररूपकार्यकी अपेक्षा, अक्षर या अविनासीहै। जब इस मैं के साथ कर्ता भोक्ताहूँ—ऐसा प्रयोग होताहै—तब इसी अहंका नाम अज्ञान होजाताहै, और इसके साथी सच्चिदानन्दका नाम अज्ञानी होजाताहै। जब इस मैं के साथ सच्चिदानन्दब्रह्महूं—ऐसा प्रयोग होताहै—तब इस वृत्तिका नाम, विद्या या ज्ञान होजाताहै, और इसके साथी सत्का नाम, विद्वान् या ज्ञानी होजाताहै। अर्थात् इसी अहंवृत्तिके प्रधान प्रकृति माया अविद्या अज्ञान आवरण मन बुद्धि और चित्त आदि सूक्ष्म स्थूल नामहैं। १ जो लोग, अहंवृत्तिसे आगे अज्ञानकी कल्पनाकरके, सुषुप्तिमें इस अहंवृत्तिका अज्ञानमें लीन होना बता रहेहैं, अर्थात् अहंवृत्ति और सच्चिदानन्दके बीचमें अज्ञानरूपी एक दीवार खड़ी कररहेहैं- उन लोगोंने "प्राण बन्धनं हि सोम्य

मनः" हे सोम्य, मन, प्राण बन्धनवालाहै यानी मनका सत्‌ही आधार या आश्रयहै। इस श्रुतिको तथा यहांके शांकरभाष्यको ध्यान पूर्वक नहीं पढ़ाहै। क्योंकि भाष्यमें मनका सत्‌में लीन होना बतलायाहै, अज्ञानमें नहीं। इसीसे भाष्यने सुषुप्तिमें सत्‌-को, द्वैतरहित शुद्धब्रह्म सिद्ध कियाहै। २ समस्त सुषुप्तिको आनन्दमयकोश या कारणशरीर माननेवाले उन लोगोंने पंचदशी के योगानन्द प्रकरणमें ४४।४५।५६ और १६ इन श्लोकोंकोभी ध्यान पूर्वक नहीं पढ़ाहै। क्योंकि इन श्लोकोंमें, सुषुप्तिकी आदि अवस्थाको आनन्दमयकोश मानकर वह जीवकी अवस्था मानीहै, और उसी जीवको, सुषुप्तिकी मध्य अवस्था या गाढ सुषुप्तिमें, द्वैतरहित पूर्णब्रह्म सिद्ध कियाहै। तैतरीय० में भी 'ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा" आनन्दमयकोशरूप पक्षीका ब्रह्म आधारहै। ऐसा कहाहै। इसलिये अहंवृत्तिके आगे केवल सच्चिदानन्दब्रह्महै, किन्तु अज्ञान अविद्या या कारणशरीर नामकी कोई वस्तु नहींहै। अतः गाढ सुषुप्तिमें यह द्वैतरहित पूर्णब्रह्महै। इसप्रकार पूर्वोक्त श्रुतियोंसे तथा भाष्यसे सिद्ध होगयाकि जीवात्माका, अहंवृत्तिसे रहित वास्तविकस्वरूप सच्चिदानन्दब्रह्महै तथा यही ज्ञेयब्रह्म या जानने केयोग्यब्रह्महै।

आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञानका अधिकारी

यह जीवात्मा, वास्तवमें सच्चिदानन्दरूप होता हुआभी अपनी अहंरूपा अविद्याशक्तिकेद्वारा, पुण्यपापका कर्ता और उनके फल सुखदुखका भोक्ता बनकर शब्दादिक पंचविषयात्मक संसारमें,

इष्ट प्राप्तिकेलिये और अनिष्टकी निवृत्तिके लिये कभी उच्च और कभी नीच योनियोंमें भ्रमणकररहाहै। जब किसी पुण्यकर्मसे निष्कामकर्म करताहै, तब इसके अन्तःकरणका मल नाम दोष दूर होजाताहै। मलनाम राग द्वेषकाहै। जब फिर ईश्वरकी नाम स्मरण आदि निष्काम भक्ति करताहै तब इसके विक्षेपकी निवृत्ति होजातीहै विक्षेप नाम चित्तकी चंचलताकाहै। जब तीसरा आवरण नामक दोष रहजाताहै आवरण नाम अपने वास्तविक-स्वरूपको न जाननेकाहै। यह ज्ञानसे नष्ट होताहै। विवेक विराग शमादि षट्कसंपत्ति मुमुक्षता श्रवण मनन निदिध्यासन और समाधि ये आठ साधन ज्ञानकेहैं। इनमेंभी विवेक आदि चार श्रवणके साधनहैं, और श्रवण आदि चारज्ञानके साक्षात् साधनहैं। १ विवेक=सच्चिदानन्दब्रह्म सत्यहै और जगत् मिथ्या या अस्थायीहै; इस विचारका नाम विवेकहै। २ विराग=इस लोकके और ब्रह्मलोकतकके भोगोंमें ग्लानि होजानी, इसका नाम वैराग्यहै। ३ शमादि षट्क संपत्ति (क) शम=भोगेहुए विषयोंमें मनको फिर न जाने देना (ख) दम=इन्द्रियोंको शास्त्रनिशिद्ध विषयोंसे रोकना। (ग) श्रद्धा=असांप्रदायी उपनिषद्वाक्योंमें और तदनुसारी गुरूके वाक्योंमें विश्वास। (घ) समाधान= भविष्यत्में होनेवाले विषयोंमें मनको न जाने देना। (ङ) उपरति=स्वयंप्राप्त हुए विषयोंमेंभी उपेक्षा या त्यागबुद्धि करनी। (च) तितिक्षा=शीत उष्ण आदि द्वन्दों या जोड़ेको बिना किसी प्रतिक्रियाकिये सहन करना। यह तीसरा साधन समादि षट्क

संपत्तिहै । ४ मुमुक्षा=मोक्षकी इच्छा होनी । ये चार साधन ज्ञानकेहैं । इनके द्वारा कोईभी मनुष्य, ज्ञानका अधिकारी अर्थात् ज्ञानके साधन श्रवण आदिका अधिकारी या पात्र बन जाताहै । १ श्रवण=गुरूके मुखसे "तत्त्वमसि" आदि जीव और ब्रह्मके अभेद बोधकवाक्योंको सुनना । २ मनन=एकान्तमें, जीव और ब्रह्मके अभेदको सिद्ध करनेवाली युक्तियों सहित सुनेहुए वाक्योंका चिन्तन करना । इनकेद्वारा अधिकारी ब्रह्मवित होजाताहै । ३ निदिध्यासन या सविकल्पसमाधि=बुद्धिवृत्तिका स्वस्वरूपसच्चिदानन्दब्रह्ममें, मैं ब्रह्महूँ इसप्रकार शान्तप्रवाह बने रहना, इसकेद्वारा ब्रह्मवित् व्यक्ति ब्रह्मनिष्ठ होजाताहै । ४ निर्विकल्पसमाधि=मैं सच्चिदानन्दब्रह्महूँ, इस वृत्तिकाभी सच्चिदानन्दब्रह्ममें लीन होजाना, इसकेद्वारा ब्रह्मनिष्ठ व्यक्ति, ब्रह्म होजाताहै । तात्पर्ययहकि, विवेक आदि ज्ञानके साधनोंसे रहित अनधिकारी मनुष्यभी, श्रवण मननकेद्वारा ब्रह्मवित् होजाताहै—जैसाकि आजका बहुतसा समाज, ब्रह्मज्ञान कथनकेद्वारा ब्रह्मवेत्ता बनाहुआहै । परन्तु जो व्यक्ति, विवेक आदि ज्ञानके साधनोंद्वारा श्रवण मनन निदिध्यासन और समाधि करके ब्रह्मवित् होताहै । वास्तवमें वही उत्तम ब्रह्मवित्है ।

धर्मशास्त्रोंके अनुसार ब्रह्मवित्, ब्रह्मचर्य आदि नीचेके आश्रमोंमें अपनी प्रारब्धके अनुसार जाताहै, परन्तु ऊपरके संन्यास आदि आश्रमोंसे नीचेके आश्रमोंमें नहीं आताहै । अर्थात् वह जिस आश्रममें रहताहै उसके धर्मोंका पालन करताहै, किन्तु उनका उल्लंघन नहीं करता । ब्रह्म० अ० ४ पाद १ सूत्र १३

"तदधिगम उत्तरपूर्वाघयोरश्लेशविनाशौ।" आत्माका वास्तविक-स्वरूप साक्षात् करलेनेपर, आत्मज्ञके पीछेके और पहिले पुण्यपापोंका अश्लेश और विनाश होजाताहै। अर्थात पहिलेके संचितकर्मों का विनाश होजाताहै और आत्मज्ञान होजानेके अनन्तर किये हुए पुण्यपापोंका उसको स्पर्श नहीं होता। सूत्र १९ "भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा संपद्यते" प्रारब्धकर्मों की भोगद्वारा समाप्तिकरके ब्रह्मरूप होजाताहै। यह सूत्र छांदोग्य छठा अध्याय खण्ड १४ की "तस्य तावदेव चिरं यावन्न विमोक्ष्येऽथ संपत्स्य इति।" उसको ब्रह्मरूप होनेमें तभीतक विलम्बहै, जबतक वह प्रारब्धकर्मों की भोगकर समाप्ति नहीं करदेता, उसके अनन्तर वह सतूरूप हो-जाताहै, इस श्रुतिके आधारपर बनायागयाहै। बृहदा० अ० ४ ब्राह्मण ४ में श्रुति "अथाकामयमानो०" जो कामनारहित निष्काम और आत्मकामहै—उसके प्राण गमन नहीं करते, यहांही लीन होजातेहैं, वह ब्रह्म होताहुआही ब्रह्म होताहै। इसप्रकार वह ब्रह्मवित् मुक्त होजाताहै। ब्रह्म०अ०४ पाद४सूत्र१६ "स्वाप्ययसंपत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि।" सुषुप्ति और कैवल्यमुक्तिमें ज्ञाता ज्ञान और ज्ञेयरूपी विशेषज्ञानका अभाव होजातहै। भावार्थ यह कि सुषुप्ति अवस्थामें मनोवृत्ति, कर्म और वासनाके सहित हुई स्वाश्रय सत्में लीन होतीहै, इसीसे वहांसे लौट आतीहै। परन्तु कैवल्यमुक्तिकी अवस्थामें, मैं ब्रह्महूँ ऐसी विद्यारूप मनोवृत्ति, कर्म और वासनासे रहित हुई स्वाश्रय सच्चिदानन्द ब्रह्ममें लीन होतीहै— इसीसे उसका वहांसे उत्थान नहीं होता। इन दोनोंमें

इतनाही अन्तरहै। इसप्रकार मैं सच्चिदानन्दब्रह्महूं, इस आत्म-ज्ञानका फल, स्वस्वरूपसे स्थित होना कैवल्यमोक्षहै। इस समग्र लेखका सारांश यह हुआ कि वेदोंके पूर्वोक्त वाक्योंके अनुसार, भक्तिका मुख्यफल आत्मज्ञानका होनाहै और आत्मज्ञानका फल मोक्षहै। अतः भक्ति, ज्ञानका साधनहै और ज्ञान मोक्षका साधनहै, किन्तु भक्ति, स्वतन्त्ररूपसे मोक्षका साधन नहींहै।

इस प्रकार "वेदोक्त भक्ति ज्ञान तथा इनका फल" नामका लेख समाप्त हुआ।

निर्माता— श्री दण्डी सं० रामतीर्थजी

पहिली बार १ सहस्र। ज्येष्ट वि० सं० २०१३।

श्री दण्डी सं० रामतीर्थजी द्वारा निर्मित पुस्तकें

१— शास्त्रीय धर्म दिवाकर।

२-— वैदिक ब्रह्म विचार।

३— वेदोक्त नित्यकर्म।

४— वेदोक्त भक्ति ज्ञान तथा इनका फल।

हिन्दू इलैक्ट्रिक प्रेस, हरिद्वार में मुद्रित।